CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

17 वर्ष UPSC

आईएएस मुख्य परीक्षा

समाजशास्त्र

प्रश्नोत्तर रूप में

2008-2024 अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र

समाजशास्त्र

प्रश्नोत्तर रूप में

आईएएस मुख्य परीक्षा अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र 2008-2024

यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के वैकल्पिक विषय के साथ-साथ राज्य लोक सेवा आयोगों की मुख्य परीक्षाओं तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी समान रूप से उपयोगी है।

- पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हों तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हों।
- इस पुस्तक में प्रश्नों से संबंधित अन्य विशिष्ट जानकारियों को भी उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि अभ्यर्थी इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न-पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।
- इस पुस्तक का उपयोग अभ्यर्थी अपनी उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृत्ति व प्रकृति को समझने के लिए भी कर सकते हैं।

संपादकः एन. एन. ओझा

हलः क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

अनुक्रमणिका

- समाजशास्त्र मुख्य परीक्षा 2024 हल प्रश्न-पत्र-I 1-14
- समाजशास्त्र मुख्य परीक्षा 2024 हल प्रश्न-पत्र-II 15-29
- समाजशास्त्र मुख्य परीक्षा 2023 हल प्रश्न-पत्र-I 30-44
- समाजशास्त्र मुख्य परीक्षा 2023 हल प्रश्न-पत्र-II 45-60

प्रथम प्रश्न-पत्र

1. **समाजशास्त्र: विद्याशाखा** 1-18
   - क) यूरोप में आधुनिकता एवं सामाजिक परिवर्तन तथा समाजशास्त्र का अविर्भाव
   - ख) समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों से इसकी तुलना
   - ग) समाजशास्त्र एवं सामान्य बोध।
2. **समाजशास्त्र: विज्ञान के रूप में** 19-34
   - क) विज्ञान, वैज्ञानिक पद्धति एवं समीक्षा
   - ख) अनुसंधान क्रिया विधि के प्रमुख सैद्धांतिक तत्व
   - ग) प्रत्यक्षवाद एवं इसकी समीक्षा
   - घ) तथ्य, मूल्य एवं उद्देश्यपरकता
   - ङ) प्रत्यक्षवादी क्रियाविधियां
3. **अनुसंधान पद्धतियां एवं विश्लेषण** 35-57
   - क) गुणात्मक एवं मात्रात्मक पद्धतियां
   - ख) दत्त संग्रहण की तकनीक
   - ग) परिवर्तन, प्रतिचयन, प्राक्कल्पना, विश्वसनीयता एवं वैधता
4. **समाजशास्त्री चिंतक** 58-101
   - क) कार्ल मार्क्स- ऐतिहासिक भौतिकवाद, उत्पादन विधि, विसंबंधन, वर्ग संघर्ष
   - ख) इमाईल दुखीम- श्रम विभाजन, सामाजिक तथ्य, आत्महत्या, धर्म एवं समाज।
   - ग) मैक्स वेबर- सामाजिक क्रिया, आदर्श प्रारूप, सत्ता, अधिकारीतंत्र, प्रोटेस्टेंट नीति शास्त्र और पूंजीवाद की भावना।
   - घ) टैल्कॉट पार्सन्स-सामाजिक व्यवस्था, प्रतिरूप परिवर्त
   - ङ) राबर्ट के मर्टन-अव्यक्त तथा अभिव्यक्त प्रकार्य अनुरूपता एवं विसामान्यता, संदर्भ समूह
   - च) मीड- आत्म एवं तादात्म्य
5. **स्तरीकरण एवं गतिशीलता** 102-121
   - क) संकल्पनाएं-समानता, असमानता, अधिक्रम, अपवर्जन, गरीबी एवं वंचना
   - ख) सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांत - संरचनात्मक प्रकार्यवादी सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धांत, वेबर का सिद्धांत
   - ग) आयाम-वर्ग, स्थिति समूहों, लिंग, नृजातीयता एवं प्रजाति का सामाजिक स्तरीकरण
   - घ) सामाजिक गतिशीलता-खुली एवं बंद व्यवस्थाएं, गतिशीलता के स्रोत एवं कारण
6. **कार्य एवं आर्थिक जीवन** 122-136
   - क) विभिन्न प्रकार के समाजों में कार्य का सामाजिक संगठन-दास समाज, सामंती समाज, औद्योगिक/पूंजीवादी समाज
   - ख) कार्य का औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन
   - ग) श्रम एवं समाज
7. **राजनीति और समाज** 137-156
   - क) सत्ता के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
   - ख) सत्ता प्रव्रजन, अधिकारीतंत्र, दबाव समूह, राजनैतिक दल
   - ग) राष्ट्र, राज्य, नागरिकता, लोकतंत्र, सिविल समाज, विचारधारा
   - घ) विरोध, आंदोलन, सामाजिक आंदोलन, सामूहिक क्रिया, क्रांति
8. **धर्म एवं समाज** 157-167
   - क) धर्म के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
   - ख) धार्मिक क्रम के प्रकार : जीववाद, एकतत्ववाद, बहुतत्ववाद, पंथ, उपासना, पद्धतियां
   - ग) आधुनिक समाज में धर्म : धर्म एवं विज्ञान, धर्म निरपेक्षीकरण, धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद, मूलतत्ववाद
9. **नातेदारी की व्यवस्थाएं** 168-182
   - क) परिवार, गृहस्थी, विवाह
   - ख) परिवार के प्रकार एवं रूप
   - ग) वंश एवं वंशानुक्रम
   - घ) पितृतंत्र एवं श्रम का लिंगाधारिक विभाजन
   - ङ) समसामयिक प्रवृत्तियां
10. **आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन** 183-210
   - क) सामाजिक परिवर्तन के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
   - ख) विकास एवं पराश्रितता
   - ग) सामाजिक परिवर्तन के कारक
   - घ) शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन
   - ङ) विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक परिवर्तन

द्वितीय प्रश्न-पत्र

भारतीय समाज : संरचना एवं परिवर्तन

भारतीय समाज का परिचय

1. **भारतीय समाज के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य............211-222**
   क) भारतीय विद्या (जी एस धुर्ये)
   ख) संरचनात्मक प्रकार्यवाद (एम.एन. श्रीनिवास)
   ग) मार्क्सवादी समाजशास्त्र (ए.आर. देसाई)
2. **भारतीय समाज पर औपनिवेशिक शासन का प्रभाव 223-229**
   क) भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि
   ख) भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण
   ग) औपनिवेशिककाल के दौरान विरोध एवं आंदोलन
   घ) सामाजिक सुधार

सामाजिक संरचना

3. **ग्रामीण एवं कृषिक सामाजिक संरचना..............230-239**
   क) भारतीय ग्राम का विचार एवं ग्राम अध्ययन
   ख) कृषिक सामाजिक संरचना-पट्टेदारी प्रणाली का विकास, भूमि सुधार
4. **जाति व्यवस्था..240-252**
   क) जाति व्यवस्था के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य (जी.एस. धुर्ये, एम एन श्रीनिवास, लुईड्यूमां, आंद्रे बेतेय)
   ख) जाति व्यवस्था के अभिलक्षण
   ग) अस्पृश्यता-रूप एवं परिप्रेक्ष्य
5. **भारत में जनजातीय समुदाय 253-263**
   क) परिभाषीय समस्याएं
   ख) भौगोलिक विस्तार
   ग) औपनिवेशिक नीतियां एवं जनजातियां
   घ) एकीकरण एवं स्वायत्ता के मुद्दे
6. **भारत में सामाजिक वर्ग 264-269**
   क) कृषिक वर्ग संरचना
   ख) औद्योगिक वर्ग संरचना
   ग) भारत में मध्यम वर्ग
   घ) परंपरागत भारतीय सामाजिक संगठन
7. **भारत में नातेदारी की व्यवस्थाएं.......................270-282**
   क) भारत में वंश एवं वंशानुक्रम
   ख) नातेदारी व्यवस्थाओं के प्रकार
   ख) भारत में परिवार एवं विवाह
   घ) परिवार घरेलू आयाम
   ङ) पितृतंत्र, हकदारी एवं श्रम का लिंगाधारित विभाजन
8. **धर्म एवं समाज..283-291**
   क) भारत में धार्मिक समुदाय
   ख) धार्मिक अल्पसंख्यकों की समस्याएं

भारत में सामाजिक परिवर्तन

9. **भारत में सामाजिक परिवर्तन की दृष्टियां 292-309**
   क) विकास आयोजना एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था का विचार
   ख) संविधान, विधि एवं सामाजिक परिवर्तन
   ग) शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन
   घ) महिला और समाज
10. **भारत में ग्रामीण एवं कृषि रूपांतरण.................310-319**
   क) ग्रामीण विकास कार्यक्रम, समुदाय विकास कार्यक्रम, सहकारी संस्थाएं, गरीबी उन्मूलन योजनाएं
   ख) हरित क्रांति एवं सामाजिक परिवर्तन
   ग) भारतीय कृषि में उत्पादन की बदलती विधियां
   घ) ग्रामीण मजदूर, बंधुआ एवं प्रवासन की समस्याएं
11. **भारत में औद्योगिकरण एवं नगरीकरण.............320-334**
   क) भारत में आधुनिक उद्योग का विकास
   ख) भारत में नगरीय बस्तियों की वृद्धि
   ग) श्रमिक वर्ग : संरचना, वृद्धि, वर्ग संघटन
   घ) अनौपचारिक क्षेत्रक, बाल श्रमिक
   ङ) नगरी क्षेत्र में गंदी बस्ती एवं वंचन
12. **राजनीति एवं समाज..335-343**
   क) राष्ट्र, लोकतंत्र एवं नागरिकता
   ख) राजनैतिक दल, दबाव समूह, सामाजिक एवं राजनैतिक प्रव्रजन
   ग) क्षेत्रीयतावाद एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण
   घ) धर्म निरपेक्षीकरण
13. **आधुनिक भारत में सामाजिक आंदोलन.............344-358**
   क) कृषक एवं किसान आंदोलन
   ख) महिला आंदोलन
   ग) पिछड़ा वर्ग एवं दलित वर्ग आंदोलन
   घ) पर्यावरणीय आंदोलन
   ङ) नृजातीयता एवं अभिज्ञान आंदोलन
14. **जनसंख्या गतिकी 359-370**
   क) जनसंख्या आकार, वृद्धि संघटन एवं वितरण
   ख) जनसंख्या वृद्धि के घटक : जन्म, मृत्यु, प्रवासन
   ग) जनसंख्या नीति एवं परिवार नियोजन
   घ) उभरते हुए मुद्दे : काल प्रभावन, लिंग अनुपात, बाल एवं शिशु मृत्यु दर, जनन स्वास्थ्य
15. **सामाजिक रूपांतरण की चुनौतियां...................371-378**
   क) विकास का संकट : विस्थापन, पर्यावरणीय समस्याएं एवं संपोषणीयता
   ख) गरीबी, वंचन एवं असमानताएं
   ग) स्त्रियों के प्रति हिंसा
   घ) जाति द्वंद्व
   ङ) नृजातीय द्वंद्व, सांप्रदायिकता, धार्मिक पुन: प्रवर्तनवाद
   च) असाक्षरता तथा शिक्षा में समानताएं

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2024

समाजशास्त्र

प्रश्न-पत्र-I

समाजशास्त्र: विद्याशाखा

प्रश्नः समाजशास्त्र की प्रकृति की चर्चा कीजिए। सामाजिक मानवशास्त्र के साथ इसके संबंध पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: समाजशास्त्र, एक सामाजिक विज्ञान है जिसमें मानव समाजों, उनकी अंत:क्रियाओं और उन्हें संरक्षित करने और परिवर्तित करने वाली प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन संस्थाओं, समुदायों, आबादी और लिंग, नस्लीय या आयु समूहों जैसे समाज के घटक भागों की गतिशीलता की जांच पर केन्द्रित है।

सामाजिक मानवशास्त्र (Social Anthropology) के साथ संबंध

- दोनों ही क्षेत्र मानव समाज की जांच करते हैं, जिसमें समान सैद्धांतिक चिंताएं और रुचि के क्षेत्र शामिल हैं। हालांकि वे इस पर अलग-अलग जोर देते हैं, लेकिन वे दोनों ही सामाजिक अंत:क्रियाओं और सांस्कृतिक प्रतिमानों को समझने का प्रयास करते हैं।
- समाजशास्त्र आमतौर पर वृहद स्तर का दृष्टिकोण अपनाता है, यह देखते हुए कि लोग और समूह व्यापक सामाजिक रुझानों से कैसे प्रभावित होते हैं। लोगों को बड़े समाजों के प्रतिनिधियों के रूप में परखकर, सामाजिक मानवशास्त्र सूक्ष्म स्तर पर अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।
- इन दोनों विषयों की शास्त्रीय पश्चिमी धारणाएं समाजशास्त्र को औद्योगिक समाज के अध्ययन के रूप में देखती हैं, जबकि सामाजिक मानवशास्त्र को आदिम समाज के अध्ययन के रूप में। हालांकि, आज 'औद्योगिक' और 'अन्य' के बीच का अंतर धुंधला हो गया है और यह परिभाषा भारत जैसे बहुलतावादी समाज में भी लागू नहीं होती है जहां श्रीनिवास के अनुसार यह 'अन्य' हर दूसरे घर में पाया जाता है।
- कार्यप्रणाली के संदर्भ में, समाजशास्त्र सामान्य प्रवृत्तियों की पहचान करने के लिए बड़े नमूनों और अधिक मात्रात्मक डेटा का उपयोग करता है। संस्कृति के गहन ज्ञान के लिए, सामाजिक मानवशास्त्र अक्सर गुणात्मक तकनीकों और छोटी, गहन जांच का उपयोग करता है।
- समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र की उत्पत्ति काफी अलग-अलग थी। समाजशास्त्र के पश्चिमी बुद्धिजीवियों के पास आधुनिकता और औद्योगिकीकरण के आगमन के समय एक तैयार संदर्भ था, जबकि मानवविज्ञानियों को अपना खुद का संदर्भ खोजना पड़ा। सामाजिक मानवशास्त्र प्रागैतिहासिक पुरातत्व से उधार लेता है।

इसलिए, आधुनिकता के प्रभाव में बदल रहे विभिन्न समाजों का अध्ययन करने में दोनों ही विषय समान रूप से उपयोगी हैं। उन्नत समाजों का अध्ययन करना अब समाजशास्त्रियों का विशेषाधिकार नहीं रह गया है।

प्रश्नः समाजशास्त्र यूरोपीय ज्ञानोदय और पुनर्जागरण के उत्पाद के रूप में उभरा है। इस कथन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उत्तर : पुनर्जागरण ने आधुनिकता की विचारधारा को जन्म दिया और इससे आधुनिकता की शुरुआत हुई। पुरानी मान्यताओं पर खुलकर सवाल उठाए गए और तर्कशीलता एक नए 'धर्म' के रूप में उभरी।

ज्ञानोदय और पुनर्जागरण के उत्पाद के रूप में समाजशास्त्र

- रूसो, मोंटेस्क्यू आदि ने आधुनिक राजनीतिक विचारों की बात की, जबकि एडम स्मिथ, रिकार्डो और जेएस मिल जैसे लोगों ने नई आर्थिक व्यवस्था की बात की। इन सभी में एक बात समान थी - मानवीय विचारों की तर्कसंगतता।
- पुरानी व्यवस्था की जगह एक नई व्यवस्था ने ले ली और इसने समाज में काफी उथल-पुथल और अशांति पैदा कर दी। इस पृष्ठभूमि में हेगेल, कॉम्टे और स्पेंसर जैसे लोगों के दिमाग में शुरुआती समाजशास्त्रीय विचार उभरे।
- सामाजिक घटनाओं का धार्मिक से तार्किक स्पष्टीकरण की ओर परिवर्तन समाजशास्त्र के विकास के लिए आवश्यक था।
- अनुशासन के उद्भव को प्रभावित करने वाली सबसे बड़ी घटना फ्रांसीसी क्रांति थी जो स्वयं ज्ञानोदय दर्शन से प्रभावित थी। इसने पुरानी सामंती व्यवस्था को एक नई व्यवस्था से बदल दिया।
- लोकतंत्र, स्वतंत्रता और बंधुत्व के आदर्श नए नारे बन गए। लेकिन ये आसानी से नहीं आए और पुरानी व्यवस्था ने इनका कड़ा

विरोध किया। पुराने और नए के बीच संघर्ष शुरू हो गया जिसने बहुत अनिश्चितता की स्थिति पैदा कर दी। इसने बुद्धिजीवियों - खासकर कॉम्टे, सेंट साइमन और दुर्खीम को समाज में स्थिरता बहाल करने के लिए नए उत्तर खोजने के लिए प्रेरित किया।

हालांकि, यह विचार कि समाजशास्त्र इन यूरोपीय क्रांतियों का उपोत्पाद है, कई अन्य कारकों द्वारा प्रश्नचिन्हित किया जाता है जैसेः

- भौतिक विकास को औद्योगिक क्रांति के आगमन और पूंजीवाद के विकास के रूप में समझा जाता है। आधुनिकता और औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन की फैक्ट्री प्रणाली को जन्म दिया, मध्यम वर्ग का उदय हुआ और सामंती सम्पदा का विघटन हुआ।
- 19वीं शताब्दी में सामाजिक उथल-पुथल ने समाजशास्त्र के औपचारिक विकास के लिए एक तात्कालिक प्रोत्साहन का काम किया और तीव्र सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन को जन्म दिया।
- प्रारंभिक समाजशास्त्रीय विचार गैर-यूरोपीय समाजों के साथ अंत:क्रियाओं से प्रभावित थे, अक्सर नकारात्मक तरीके से, जिससे नृजातीयवाद और सांस्कृतिक सापेक्षवाद के बारे में चर्चाएं शुरू हुईं।
- समाजशास्त्र में संघर्ष सिद्धांत को मार्क्स की पूंजीवाद और वर्ग विश्लेषण की आलोचना द्वारा आकार दिया गया था, जो ज्ञानोदय के विचारों से एक मौलिक प्रस्थान का प्रतीक था।

हालांकि समाजशास्त्र पर ज्ञानोदय और पुनर्जागरण का बहुत प्रभाव पड़ा, लेकिन यह क्षेत्र बौद्धिक धाराओं, सामाजिक बदलावों और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के बीच एक जटिल अंत:क्रिया के परिणामस्वरूप विकसित हुआ। इसका विकास न तो रैखिक था और न ही विशुद्ध रूप से यूरोपीय; बल्कि, इसने विभिन्न दृष्टिकोणों को ध्यान में रखा और सामाजिक वास्तविकताओं की एक शृंखला को संबोधित किया।

समाजशास्त्रः विज्ञान के रूप में

प्रश्नः क्या आप ऐसा सोचते हैं कि समाजशास्त्रीय अनुसंधान में 'वस्तुनिष्ठता' की अवधारणा अति प्रचारित विचार है? गैर-प्रत्यक्षवादी विधियों के गुण एवं दोषों की विवेचना कीजिए।

उत्तर : वस्तुनिष्ठता (Objectivity) एक दृष्टिकोण है जिसमें वैज्ञानिक अन्वेषक का दृष्टिकोण पृथक, पक्षपातरहित, मूल्य मुक्त और पूर्वाग्रहों से मुक्त होता है।

समाजशास्त्रीय अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का महत्व

- मूल्य पूर्वाग्रहों और व्यक्तिपरकता का आधार हैं और वे जाति, लिंग, संस्कृति, वर्ग, धर्म, विचारधारा आदि जैसी विभिन्न पूर्वधारणाओं से निकलते हैं।
- रॉबर्ट बिएरस्टेड ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है, 'निष्पक्षता का अर्थ है कि पूछताछ और जांच के परिणामस्वरूप प्राप्त निष्कर्ष, जांचकर्ता की जाति, रंग, पंथ, व्यवसाय, राष्ट्रीयता, धर्म, नैतिक प्राथमिकताओं और राजनीतिक प्रवृत्ति से स्वतंत्र होते हैं।'
- इसलिए, वस्तुनिष्ठता मूल्य तटस्थता और परिणाम के बारे में पूर्वानुमान की पूर्वकल्पना करती है। यह 'वैज्ञानिक पद्धति' के स्तंभों में से एक है और प्रत्यक्षवाद का मूल है।

'निष्पक्षता' एक अति-प्रचारित विचार

- 19वीं सदी के अंत में गैर-प्रत्यक्षवादी विचारों ने तर्क दिया कि 'पूर्ण वस्तुनिष्ठता न तो वांछनीय है और न ही प्राप्त करने योग्य है।'
- डिल्थी के अनुसार, तथ्य आधारित दृष्टिकोण केवल एक आयाम का अन्वेषण करता है क्योंकि यह सांस्कृतिक, वैचारिक आयामों की उपेक्षा करता है।
- वेबर ने तथ्य आधारित दृष्टिकोण की आलोचना की और उन्होंने व्याख्यात्मक दृष्टिकोण के मूल सिद्धांतों को स्थापित किया। समाजशास्त्र के अध्ययन में विभिन्न विचारधाराएं और दृष्टिकोण होने के कारण पूर्ण वस्तुनिष्ठता संभव नहीं है।
- गोल्डनर के अनुसार - 'समाजशास्त्र में मूल्य तटस्थता एक मायावी लक्ष्य है' क्योंकि जांचकर्ताओं को बहुस्तरीय सत्यों से निपटना पड़ता है। इसलिए दृष्टिकोण और मूल्यों को आवश्यक माना जाता है।
- गुन्नार मिर्डल के अनुसार - 'अराजकता स्वयं ब्रह्मांड में व्यवस्थित नहीं हो सकती, हमें दृष्टिकोण की आवश्यकता है।'

गैर-प्रत्यक्षवादी तरीकों के लाभ

- गैर-प्रत्यक्षवादी भावनाओं, उद्देश्यों, आकांक्षाओं और सामाजिक वास्तविकता की व्यक्ति की व्याख्या के माध्यम से प्रदर्शित आंतरिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं।
- गैर-प्रत्यक्षवादियों ने सामाजिक वास्तविकता को समझने का सुझाव दिया, न कि घटनाओं की भविष्यवाणी करने का। वे सामान्यीकृत सार्वभौमिक सिद्धांतों के निर्माण से बचते रहे।
- गैर-प्रत्यक्षवादियों ने पूर्ण वस्तुनिष्ठता की असंभवता पर प्रकाश डाला और इसलिए शोध में व्यक्तिपरकता को समायोजित करने के पक्षधर थे।

गैर-प्रत्यक्षवादी तरीकों के दोष

- गैर-प्रत्यक्षवादी एक भी पद्धतिगत सिद्धांत विकसित नहीं कर सके, जिसके कारण गैर-प्रत्यक्षवादी शोध में व्यापक विविधताएं आई और कुछ ने तो मात्रात्मक तरीकों के उपयोग पर भी जोर दिया।
- गैर-प्रत्यक्षवादी विधियां पूछताछकर्ता की क्षमता पर बहुत अधिक निर्भर करती हैं और परिणामस्वरूप, एक ही घटना के लिए अलग-अलग स्पष्टीकरण दिए जाते हैं।
- गैर-प्रत्यक्षवादी सामाजिक घटना के स्वतंत्र अस्तित्व की उपेक्षा करते हैं तथा इस तथ्य को नजरअंदाज करते हैं कि मनुष्य पहले से मौजूद समाज में पैदा होता है।

इसलिए, आज वस्तुनिष्ठता का अर्थ वही नहीं है और इसमें बदलाव आया है। आज, वस्तुनिष्ठता को पहले से प्राप्त अंतिम परिणाम के बजाय एक सतत, चल रही प्रक्रिया के रूप में मानना होगा। इसलिए, समाजशास्त्र में परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों के बावजूद, उनमें से प्रत्येक को अपनाते हुए वस्तुनिष्ठता को बनाए रखा जा सकता है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2024

समाजशास्त्र

प्रश्न-पत्र-II

भारतीय समाज के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य

प्रश्नः भारतीय समाज के अध्ययन पर 'पाश्चात्य' तथा 'भारत शास्त्रीय (इंडोलॉजिकल)' दृष्टिकोण के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए। 'भारत शास्त्रीय' दृष्टिकोण में जी. एस. घुर्ये के योगदान के प्रमुख पक्षों पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः भारतीय समाज की जांच के लिए कई दृष्टिकोणों का इस्तेमाल किया गया है, जिनमें सबसे उल्लेखनीय पश्चिमी और भारतीय दृष्टिकोण हैं। भारतीय सामाजिक प्रक्रियाओं और संरचनाओं के तरीके, धारणाएं और व्याख्याएं इन दृष्टिकोणों के बीच भिन्न हैं।

भारतीय समाज के अध्ययन पर 'पश्चिमी' और 'भारत शास्त्रीय (इंडोलॉजिकल)' दृष्टिकोण

- 'इंडोलॉजी' का शाब्दिक अर्थ है 'भारतीय समाज और संस्कृति का व्यवस्थित अध्ययन'। इंडोलॉजिकल दृष्टिकोण का कार्य पारंपरिक धार्मिक ग्रंथों, प्राचीन कानूनी और ऐतिहासिक दस्तावेजों, साहित्यिक कार्यों और यहां तक कि पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर भारतीय समाज की व्याख्या करना और उसे समझना है।
- इंडोलॉजी भारतीय समाज के व्यापक दायरे में भारतीय भाषाओं, विचारों, विश्वासों, रीति-रिवाजों आदि के अध्ययन पर जोर देती है।
- भारत में प्रारंभिक समाजशास्त्रीय चिंतन भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की विचारधारा और भारतीय संस्कृति और विचार की विशिष्टता से प्रभावित था। यह घुर्ये, डीपी मुखर्जी आदि के अध्ययन के विषयों के चयन में भी परिलक्षित होता है।
- स्वतंत्रता के बाद समाजशास्त्र का वैज्ञानिक विकास हुआ और 1950 के दशक में यह अमेरिकी कार्यात्मकता से भी प्रभावित हुआ। एमएन श्रीनिवास ने मैसूर के कूर्गों के अपने प्रसिद्ध अध्ययन में भारतीय समाज के अध्ययन में 'संरचनात्मक कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य' की शुरुआत की और क्षेत्र दृष्टिकोण पर भी जोर दिया।
- धार्मिक और पारंपरिक मुद्दों के स्थान पर तथ्यात्मक, अनुभवजन्य सर्वेक्षण और क्षेत्र अध्ययन पर जोर दिया गया। ग्रामीण और शहरी अध्ययनों की एक शृंखला सामने आई।
- 1970 के दशक के दौरान एआर देसाई ने भारतीय समाज के अध्ययन में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को लोकप्रिय बनाया।

इंडोलॉजिकल दृष्टिकोण में जीएस घुर्ये का योगदान

- घुर्ये की इंडोलॉजी में संस्कृति उनकी समस्त रचनाओं का केन्द्रीय तत्व है।
- संस्कृत ग्रंथों, ऐतिहासिक दस्तावेजों और अन्य पुरातात्विक सामग्रियों के संदर्भ में समझते हैं, लेकिन साथ ही सैद्धांतिक दृष्टिकोण से भी उसे संवर्धित करते हैं।
- घुर्ये की कार्यप्रणाली बहुत सारे ग्रंथों पर आधारित है। उनका दृष्टिकोण ऐतिहासिक, प्रसारवादी और वर्णनात्मक नृवंशविज्ञान का मिश्रण था। उन्होंने भारतीय समाज का अध्ययन एक विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ में करने का प्रयास किया।
- भारतीय परंपराओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रसार के रूप में देखा जाता था, जिसके परिणामस्वरूप समाज में एकता आती थी। उनका वर्णनात्मक नृवंशविज्ञान अनुभवजन्य वास्तविकता में बहुत अधिक निहित था।
- उनके अनुसार, गांव भारतीय सामाजिक जीवन का केंद्र हैं, लेकिन उन्होंने पश्चिमी विद्वानों के आत्मनिर्भरता के दृष्टिकोण को खारिज कर दिया।
- हालांकि, घुर्ये की आलोचना भारतीय समाज के प्रति उनके अति हिंदूवादी दृष्टिकोण के लिए की जाती है। वे जाति जैसी विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के संरचनात्मक निहितार्थों का पता लगाने में विफल रहे और उन्होंने केवल सांस्कृतिक पहलुओं पर ही ध्यान केंद्रित किया।

इस प्रकार, घुर्ये के कार्य ने भारतीय समाज की सच्ची समझ के लिए आवश्यक व्यावहारिक सांस्कृतिक विश्लेषण प्रदान करके इंडोलॉजिकल पद्धति में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय समाज पर औपनिवेशिक शासन का प्रभाव

प्रश्नः भारत में स्वतंत्रता-पूर्व हुए सुधार आंदोलनों के प्रमुख योगदान को रेखांकित कीजिए।

उत्तर : स्वतंत्रता-पूर्व भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वातावरण को सुधार आंदोलनों ने महत्वपूर्ण रूप से आकार दिया। ये आंदोलन, जो भारतीय समाज को आधुनिक बनाने के साथ-साथ इसके सांस्कृतिक मूल को बनाए रखने की मांग करते थे, कई सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों की प्रतिक्रिया में उभरे।

सुधार आंदोलनों का योगदान

- आधुनिक भारत में सामाजिक आंदोलनों का बहुआयामी स्वरूप है। चेतना और संचार माध्यमों के विकास के साथ ही वे विकसित हुए। शिक्षा, अधिकारों के बारे में राजनीतिक जागरूकता और लामबंदी के नए साधनों ने उनके उत्थान के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया।
- बहुदेववादी रीति-रिवाजों और मूर्तिपूजा का विरोध करने वाले आंदोलन, जैसे ब्रह्मो समाज और आर्य समाज ने एकेश्वरवादी मान्यताओं का समर्थन किया।
- जैसा कि स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस के लेखन से पता चलता है, सुधारकों ने अंतर-धार्मिक समझ को बढ़ावा दिया।
- सामाजिक समानता को आगे बढ़ाने के लिए, महात्मा गांधी और बी आर अंबेडकर जैसे सुधारकों ने अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव के खिलाफ लड़ाई लड़ी।
- जातिगत सीमाओं को खत्म करने के लिए, प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने अंतरजातीय विवाह को बढ़ावा दिया।
- 1829 में, राजा राम मोहन राय जैसे सुधारकों के प्रयासों की बदौलत विधवाओं के बलिदान (सती) को कानून द्वारा गैरकानूनी घोषित कर दिया गया।
- ज्योतिराव फुले और ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे सुधारकों ने स्कूलों की स्थापना करके और लैंगिक असमानता का विरोध करके महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया।
- समाज में विधवाओं की स्थिति को ऊपर उठाने के लिए सुधारकों के लगातार प्रयासों के कारण 1856 में हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम बना।
- सुधारों ने जातिगत सीमाओं को खत्म कर दिया, प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने अंतर-जातीय संघों को बढ़ावा दिया।
- सांस्कृतिक विरासत में भारतीय पहचान और गर्व की भावना को प्रोत्साहित करके, सुधार आंदोलनों ने अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रवाद के उदय में सहायता की। बाल गंगाधर तिलक जैसे नेताओं ने मुक्ति के लिए लोगों को एकजुट करने के लिए धार्मिक प्रतीकों का इस्तेमाल किया।
- आंदोलनों ने समकालीन शैक्षणिक प्रतिष्ठानों की स्थापना की, जो भारतीय रीति-रिवाजों के साथ पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा देते हैं, जैसे कि कलकत्ता में हिंदू कॉलेज (बाद में प्रेसीडेंसी कॉलेज)।

भारत का सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण सुधार आंदोलनों द्वारा संभव हुआ, जो भारतीय रीति-रिवाजों और पश्चिमी अवधारणाओं दोनों से प्रभावित थे। उन्होंने एक ऐसे समाज के लिए रास्ता साफ किया जो अधिक समावेशी और प्रगतिशील है, दमनकारी व्यवहार का विरोध करता है, और तर्क को प्रोत्साहित करता है।

ग्रामीण एवं कृषिक सामाजिक संरचना

प्रश्नः आंद्रे बेते के अनुसार, भारत में कृषक वर्ग की संरचना के क्या आधार हैं? विश्लेषण कीजिए।

उत्तर : अपनी पुस्तक "जाति, वर्ग और शक्ति" में, आंद्रे बेते ने भारत के कृषि समाज की वर्ग व्यवस्था को समर्थन देने वाले कई महत्वपूर्ण स्तंभों की पहचान की। उनका शोध भारत के ग्रामीण स्तरीकरण पर एक बहुआयामी परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है।

कृषि सामाजिक संरचना में जाति, वर्ग, भूमि स्वामित्व, जजमानी व्यवस्था आदि शामिल होंगे जबकि कृषि वर्ग संरचना में केवल वर्ग शामिल होंगे। भूमि भारत में कृषि सामाजिक संरचना का केंद्रीय तत्व है और जाति, वर्ग और भूमि स्वामित्व आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं।

कृषि वर्ग संरचना के आधार

- आंद्रे बेते ने इस बात पर प्रकाश डाला कि कृषि वर्ग के अंतर को प्रभावित करने वाला मुख्य कारक भूमि पर नियंत्रण है। इस मानदंड के अनुसार, प्राथमिक वर्ग भूमिहीन मजदूर, छोटे किसान मालिक और बड़े भूस्वामी हैं।
- अपनी अपूर्ण संरेखण के बावजूद, जाति अक्सर आर्थिक स्थिति और भूमि स्वामित्व के साथ सहसंबंधित होकर वर्ग अंतर को मजबूत करती है। जबकि निचली जातियां अक्सर भूमिहीन मजदूर थीं, उच्च जातियों के पास आमतौर पर अधिक भूमि होती थी।
- जटिल काश्तकारी प्रणाली के कारण एक अधिक परिष्कृत वर्ग संरचना निर्मित होती है, जिसमें बटाईदारी समझौते शामिल होते हैं तथा भूस्वामियों और श्रमिकों के बीच मध्यवर्ती वर्ग स्थापित होते हैं।
- जाति और भूमि स्वामित्व स्थानीय राजनीतिक प्रभाव के प्रमुख स्रोत थे, जिसने राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के बीच संबंध को मजबूत किया।
- बेते ने कहा कि कृषि के मशीनीकरण और व्यावसायीकरण के परिणामस्वरूप जाति-आधारित गतिशीलता कम होती जा रही है, जिससे पारंपरिक वर्ग संबंध बदल रहे हैं।

इसलिए, आंद्रे बेते ने अपने 'भारत में कृषि संरचना' में संकेत दिया है कि वर्गों को सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी समझा जाना चाहिए। कृषि वर्ग को न केवल स्वामित्व मानदंड से, बल्कि भूमि उपयोग मानदंड से भी समझा जाना चाहिए। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि भारत की कृषि वर्ग संरचना के निर्माण में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तत्वों की परस्पर क्रिया को बेते के विश्लेषण द्वारा स्वीकार किया जाता है।

प्रश्नः भारत में कृषि प्रधान सामाजिक संरचना से सम्बन्धित असमानताओं के विभिन्न स्वरूपों को चिह्नित कीजिए।

उत्तर : कृषि संबंधी सामाजिक संरचना में व्यापक विविधताएँ हैं। जैसा कि धनगरे ने अपने 'पीजेंट मूवमेंट्स इन इंडिया, 1983' में बताया है, 'भारत में भूमि-नियंत्रण और भूमि-उपयोग के संबंध में

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2023

समाजशास्त्र

प्रश्न-पत्र-I

समाजशास्त्र: विद्याशाखा

प्रश्न: समाजशास्त्र और राजनीति-विज्ञान के बीच संबंध पर चर्चा कीजिए।

उत्तर: सामाजिक विज्ञान के दो अलग-अलग विषयों के रूप में समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान में एकरूपता देखने को मिलती है, इन दोनों विषयों की विषय-वस्तु समान होने के कारण इनके अभिसरण में वृद्धि हो रही है।

- समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान के मध्य संबंधों का आरंभ मार्क्स के कार्यों से माना जाता है। उनके अनुसार राजनीतिक संस्थाएँ एवं व्यवहार, आर्थिक व्यवस्था तथा सामाजिक वर्गों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं।
- इससे प्रेरणा लेकर, 19वीं शताब्दी के अंत तक कुछ विचारकों ने दोनों विषयों के अंतर-संबंधों को और अधिक विस्तार से आगे बढ़ाने में योगदान दिया है। उदाहरण के लिए- इस संदर्भ में मिशेल्स, मार्क्स, वेबर और परेटो के राजनीतिक समाजशास्त्र में राजनीतिक दलों, अभिजात वर्ग, मतदान व्यवहार, नौकरशाही और राजनीतिक विचारधाराओं का अध्ययन किया गया।

समाजशास्त्र और राजनीति-विज्ञान में अंतर

- समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र अधिक व्यापक है और इसके अंतर्गत समाज के सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। पारंपरिक राजनीति विज्ञान के तहत किया जाने वाला अध्ययन मुख्य रूप से राज्य और सत्ता के अध्ययन तक ही सीमित रहा है।
- दृष्टिकोण के स्तर पर समाजशास्त्र अधिक विस्तृत है; जबकि राजनीति विज्ञान की विषय-वस्तु अधिक संहिताबद्ध दिखाई देती है।
- समाजशास्त्र में सरकार एवं संस्थानों के तहत आने वाले समूहों के मध्य अंतर्संबंधों पर बल दिया जाता है। दूसरी तरफ, राजनीति विज्ञान सरकार के 'अंदर' की प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालता है।

समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान में अभिसरण

- राजनीति विज्ञान के तहत ऐसे कानून निर्मित किए जाते हैं, जो जनता के कल्याण को प्रभावित करते हैं। दूसरी तरफ, समाजशास्त्र इन कानूनों और नीतियों के निर्माण हेतु आंकड़े और आधार प्रदान करता है।
- जाति, रिश्तेदारी एवं जनसांख्यिकी आदि सामाजिक घटक राजनीतिक निर्णयों और विशेष रूप से चुनावों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- राजनीतिक संगठनों की सदस्यता, मतदान व्यवहार, जातिवाद, संगठनों में निर्णय लेने की प्रक्रिया, राजनीतिक दलों के समर्थन के समाजशास्त्रीय कारण तथा राजनीति में लिंग की भूमिका आदि पर भी समाजशास्त्रीय अध्ययन किए गए हैं, इनमें राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्रीय विषय-वस्तु का मिश्रण दिखाई देता है।

इस प्रकार, समाजशास्त्र का ध्यान सामाजिक संबंधों तथा व्यक्तियों पर सामाजिक संरचनाओं के प्रभाव पर केंद्रित रहता है; जबकि राजनीति विज्ञान सत्ता, शासन और राजनीतिक संस्थानों के अध्ययन से संबंधित है।

प्रश्न: नाटकीय परिप्रेक्ष्य रोजमर्रा की जिंदगी को समझने में हमें कैसे सक्षम बनाता है?

उत्तर: समाजशास्त्र में नाटकीय परिप्रेक्ष्य का विकास समाजशास्त्री इरविंग गोफमैन द्वारा किया गया। यह एक समाजशास्त्रीय सिद्धांत है, जो दैनिक जीवन और नाटकीय प्रस्तुति के बीच समानताओं को उजागर करता है।

- नाटकीय परिप्रेक्ष्य यह मानता है कि लोग समाज की परंपराओं, सांस्कृतिक आदर्शों और दर्शकों की अपेक्षाओं के अनुसार खुद को दूसरों के सामने चित्रित करने का प्रयास करते हैं। किसी नाटक के भिन्न-भिन्न अभिनयों के समान, वे विभिन्न परिदृश्यों में विविध भूमिकाएँ निभाते हैं।
- नाटकीय परिप्रेक्ष्य लोगों को एक मंच पर विभिन्न कृत्यों (स्थितियों) में अभिनय करने वाले अभिनेता के रूप में देखता है, जिससे हमें सामान्य जीवन को समझने में मदद मिलती है।
- यह विभिन्न सामाजिक स्थितियों में हमारी आत्म-प्रस्तुति को समझने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है और अन्य लोगों पर हमें अपने प्रभाव को नियंत्रित करने में मदद करता है।
- भूमिका का निर्वहन करना (अभिनय करना) नाटकीय दृष्टिकोण के मुख्य विचारों में से एक है। हममें से प्रत्येक के जीवन में एक मित्र, माता-पिता, कार्यकर्ता और छात्र आदि के रूप में विभिन्न प्रकार की जिम्मेदारियाँ हैं।

- हममें से प्रत्येक सौंपी गई भूमिकाओं के साथ आने वाले मानकों और अपेक्षाओं को बनाए रखने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, श्रमिक के रूप में एक व्यक्ति से उत्पादक, पेशेवर और समय-पाबंद होने की अपेक्षा की जाती है।
- एक अन्य प्रमुख अवधारणा प्रभाव/इंप्रेशन प्रबंधन (Impression Management) है। यह उस पद्धति का वर्णन करती है, जिसकी सहायता से लोग उन धारणाओं को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं, जिनके आधार पर अन्य लोग उनके बारे में राय बनाते हैं। उदाहरण ार्थ कोई व्यक्ति नौकरी के लिए साक्षात्कार के समय पेशेवर पोशाक पहनता है, जिससे उसके व्यावसायिक गुणों का प्रदर्शन हो सके।
- नाटकीय दृष्टिकोण से दैनिक जीवन में एक अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। यह इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि सामाजिक अंत:क्रियाएं सतत रूप से किस प्रकार क्रियाशील रहती हैं तथा लोग सामाजिक अपेक्षाओं का सामना कैसे करते हैं। यदि दैनिक जीवन को नाटकीय परिप्रेक्ष्य की एक श्रृंखला के रूप में देखा जाए, तो हम सामाजिक अंत:क्रियाओं और मानव व्यवहार की जटिलताओं को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

प्रश्न: क्या आपको लगता है कि सामान्य ज्ञान सामाजिक अनुसंधान का प्रारंभिक बिंदु है? इसके लाभ और सीमाएं क्या हैं? व्याख्या कीजिए।

उत्तर: 'सामान्य ज्ञान' (Common Sense) को 'ऐसे नियमित ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो लोगों को उनकी रोजमर्रा के जीवन एवं गतिविधियों के संदर्भ में अवगत कराता है'। 'सामान्य ज्ञान' की व्याख्याएँ आम तौर पर 'प्रकृतिवादी' और/या 'व्यक्तिवादी' व्याख्या पर आधारित होती हैं।

'सामान्य ज्ञान' सामाजिक अनुसंधान का प्रारंभिक बिंदु हो सकता है

- 'सामान्य ज्ञान' सामाजिक घटनाओं की प्रारंभिक समझ प्रदान करता है, जो इसे अनुसंधान के लिए एक उपयोगी प्रारंभिक बिंदु बनाता है। शोधकर्ता शोध प्रश्न और परिकल्पना तैयार करने के लिए 'सामान्य ज्ञान' से प्राप्त निष्कर्षों का उपयोग कर सकते हैं।
- समाजशास्त्र में अवधारणाओं को 'सामान्य ज्ञान' को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। 'सामान्य ज्ञान' समाजशास्त्रियों को परिकल्पनाओं के निर्माण में मदद करता है।

सामाजिक अनुसंधान में 'सामान्य ज्ञान' के लाभ

- समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पास 'सामान्य ज्ञान' तक पहुंच है, ऐसी स्थिति में किसी भी समय सामाजिक अनुसंधान कार्यों को सुविधाजनक रूप में आरंभ किया जा सकता है। समाजशास्त्री 'सामान्य ज्ञान' का विस्तार करके शोध प्रश्न (Research questions) बना सकते हैं।
- 'सामान्य ज्ञान अवलोकन' का उपयोग शोधकर्ताओं द्वारा परिकल्पनाओं के विकास के आधार के रूप में किया जा सकता है, बाद में इन परिकल्पनाओं का अनुभवजन्य अनुसंधान तकनीकों (Empirical Research Techniques) का उपयोग करके परीक्षण किया जा सकता है।
- जब 'सामान्य ज्ञान' का उपयोग किया जाता है तो सामाजिक शोध के निष्कर्ष दर्शकों के लिए अधिक सुलभ एवं समझने योग्य हो जाते हैं।

सामाजिक अनुसंधान में सामान्य ज्ञान की सीमाएँ

- व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों, सांस्कृतिक मानकों और व्यक्तिगत विचारों के कारण 'सामान्य ज्ञान' की प्रकृति आंतरिक रूप से व्यक्तिपरक है। इस व्यक्तिपरकता के परिणामस्वरूप अनुसंधान के निष्कर्ष पक्षपातपूर्ण हो सकते हैं।
- सामाजिक प्रक्रियाओं की जटिलता 'सामान्य ज्ञान' के दायरे से परे हो सकती है। 'सामान्य ज्ञान' अक्सर समस्याओं का अतिसरलीकरण करता है, जिससे गलत निष्कर्ष प्राप्त करने की संभावना बनी रहती है।
- केवल 'सामान्य ज्ञान' पर भरोसा करके अध्ययन की वैज्ञानिक दृढ़ता (Scientific rigor) से समझौता करना पड़ सकता है। व्यवस्थित डेटा संग्रह और विश्लेषण आधारित अध्ययन के बिना, 'सामान्य ज्ञान' को ही आधार मानकर किए गए अध्ययन के परिणाम केवल उपाख्यानमूलक हो सकते हैं।
- मैक्स वेबर ने केवल 'सामान्य ज्ञान' के आधार पर समाजशास्त्रीय अध्ययन न करने की सलाह दी है। उन्होंने तर्क दिया कि 'सामान्य ज्ञान' मनमाने, व्यक्तिपरक अनुभवों और आदर्शों पर आधारित होता है, इसलिए यह वैज्ञानिक जांच के लिए अविश्वसनीय हो सकता है। उन्होंने सामाजिक निष्पक्षता सुनिश्चित करने में विधि परक जांच (Methodical investigation) और मूल्य तटस्थता (Value Neutrality) के महत्व को रेखांकित किया।
- समाजशास्त्र जैसे-जैसे एक विषय के रूप में विकसित हुआ है, अनेक सीमाओं के बावजूद 'सामान्य ज्ञान' के प्रति समाजशास्त्रियों की धारणा में परिवर्तन भी हुआ है। पूर्व में जब समाजशास्त्र 'दर्शन' (Philosophy) के अधिक करीब था, तब सामान्य ज्ञान को पूरक के रूप में देखा जाता था।

इसी प्रकार, जब समाजशास्त्र 'प्रत्यक्षवाद' (Positivism) के करीब आ गया, तो 'सामान्य ज्ञान' के प्रयोग को लगभग त्याग दिया गया। आगे चलकर, 'प्रत्यक्षवाद-विरोधी' (Anti-positivist) प्रवृत्ति के तहत समाजशास्त्र में 'सामान्य ज्ञान' को पुन: महत्व देने का प्रयास किया गया। इसीलिए, 'समाजशास्त्र' एवं 'सामान्य ज्ञान' के मध्य गतिशील संबंध विकसित हुए हैं, कभी-कभी इस प्रकार के संबंध पारस्परिक रूप से मजबूत भी दिखाई देते हैं।

समाजशास्त्र: विज्ञान के रूप में

प्रश्न: सामाजिक अनुसंधान की नारीवादी विधि की विशेषता क्या है? टिप्पणी कीजिए।

उत्तर: सामाजिक विज्ञान में अनुसंधान की एक ऐसी विधि जो महिलाओं के दृष्टिकोण, अनुभवों और हितों पर बल देती है, नारीवादी अनुसंधान पद्धति कहलाती है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2023

समाजशास्त्र

प्रश्न-पत्र-II

भारतीय समाज का परिचय

प्रश्नः ए.आर. देसाई के भारतीय समाज अध्ययन के 'द्वंद्वात्मक परिप्रेक्ष्य' की महत्वपूर्ण विशेषताओं को उजागर कीजिए।

उत्तरः ए.आर. देसाई को भारतीय समाज में मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य के अग्रणी प्रणेता के रूप में जाना जाता है। उनकी मौलिक रचना 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' में मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य का उपयोग करके भारतीय समाज का एक विस्तृत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

- उनके द्वारा भारतीय समाज को समझने में 'द्वन्द्वात्मक-ऐतिहासिक दृष्टिकोण' (Dialectical-Historical Approach) का प्रयोग किया गया। उन्होंने समाज की व्याख्या 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी' आधार पर ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया के रूप में की है।
- उन्होंने यह माना है कि भारतीय समाज एवं उसकी परंपराएं आर्थिक बुनियादी ढांचे से प्रभावित हैं। इस प्रकार, उनके द्वारा उत्पादक संबंधों (Productive Relations) का अध्ययन सामाजिक संरचना एवं संस्थाओं की व्याख्या करने के लिए किया गया है।
- व्यवस्थागत दृष्टिकोण से भारतीय समाज को देखने का उनका दृष्टिकोण मार्क्सवादी मॉडल पर आधारित है। देसाई ने योजनाबद्ध विकास की विफलता के मद्देनजर 1970 के दशक में देश में मौजूद विरोधाभासों एवं संघर्षों पर प्रकाश डाला है। राज्य, राष्ट्रवाद, गाँव, किसान संघर्ष, जाति, आदि उनके अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र थे।
- उन्होंने बताया है कि गांवों का विकास ऐतिहासिक रूप से ब्रिटिश-पूर्व युग में हुआ है तथा आर्थिक दृष्टिकोण से वे अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर इकाई के रूप में थे।
- उन्होंने जजमानी व्यवस्था (Jajmani System) को शोषणकारी व्यवस्था के रूप में देखा। उनके अनुसार, भू-राजस्व और पट्टेदारी की व्यवस्था के कारण समाज में नए वर्गों का उदय हुआ और ब्रिटिश शासन द्वारा उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली आरंभ की गई।
- उनका मानना है कि शोषण से साझा शत्रु की पहचान होती है तथा समाज का एकीकरण होता है। उन्होंने राष्ट्रवाद के उदय की सामाजिक-सांस्कृतिक व्याख्या के स्थान पर एक आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की। इसी के आधार पर उन्होंने स्पष्ट किया कि राष्ट्रवाद का उदय अंग्रेजों द्वारा निर्मित भौतिकवादी परिस्थितियों के विरोधाभास के परिणामस्वरूप हुआ।
- संचार के नए साधनों- रेलवे, प्रेस, डाकघर आदि ने लोगों के एकीकरण में मदद की है। वे मानते हैं कि अंग्रेजों द्वारा इस्तेमाल किए गए विभिन्न शोषणकारी तंत्रों के कारण भारतीय समाज का अनजाने में एकीकरण हुआ।

इस प्रकार, ए.आर. देसाई का 'द्वंद्वात्मक परिप्रेक्ष्य' (Dialectical Perspective) भारतीय समाज पर शोध करने के लिए एक संपूर्ण और विश्लेषणात्मक रूपरेखा प्रदान करता है।

प्रश्नः क्या परंपरा और आधुनिकता एक-दूसरे की विरोधी हैं? टिप्पणी कीजिए।

उत्तरः परंपरा एवं आधुनिकता दो अलग-अलग विचारों के प्रतीक है और इन्हें कभी-कभी परस्पर विरोधी विचारों के रूप में देखा जाता है। किंतु, भारतीय परिवेश में ये दोनों विचार स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे के विरोधी होने के बजाय गतिशील एवं सह-अस्तित्व में पाए जाते हैं।

परंपरा एवं आधुनिकता के मध्य संबंध

- भारतीय समाज सामाजिक संरचना, परिवार, धर्म और शिक्षा सहित अनेक क्षेत्रों में परंपरा और आधुनिकता के सह-अस्तित्व को प्रदर्शित करता है। उदाहरण- देश के विभिन्न भागों में आधुनिक एकल परिवार प्रणाली और पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली सह-अस्तित्व में है।
- भारतीय परंपरा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ब्रिटिश शासन के दौरान आरंभ हुई; किंतु यह प्रक्रिया पश्चिम की भांति रैखिक एकदिशात्मक नहीं थी। इसमें आधुनिकता एवं परंपरा के बीच एक द्वंद्वात्मक संबंध भी शामिल था, जिसके आधार पर इस प्रक्रिया में सीमित मात्रा में ही सही, किंतु आधुनिक को भी पारंपरिक बनाया गया।
- परंपरा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से पारंपरिक संस्थानों, मूल्यों एवं मान्यताओं, जाति, परिवार, रिश्तेदारी, राजनीतिक एवं सामाजिक संगठनों तथा धर्म आदि में बदलाव देखने को मिलता है।

- इतना ही नहीं, समाज में साहित्य एवं कला के सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव; वैज्ञानिक एवं तार्किक सोच के वैचारिक एवं मूल्यपरक प्रभाव; सार्वभौमिकता, व्यक्तिवाद एवं धर्मनिरपेक्षता द्वारा पदानुक्रम, विशिष्टवाद आदि की मौजूदा मान्यताओं पर उठाए गए प्रश्नचिह्न तथा औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के सामाजिक संरचना पर डाले गए प्रभावों को भी देखा जा सकता है।
- हालाँकि, भारत में परंपरा एवं आधुनिकता के विचार सदैव एक साथ दिखाई नहीं देते हैं। इन्हें अक्सर विसंगतियों के रूप में देखा जाता है, जो समाज के भीतर संघर्ष एवं तनाव के उत्प्रेरक का कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, समानता एवं सामाजिक न्याय के आधुनिक विचार प्राचीन जाति संरचना के साथ असंगत हैं। इसी प्रकार, बाल विवाह की प्रथा भी वैवाहिक उम्र के निर्धारण हेतु निर्मित आधुनिक कानून के विपरीत है।

इस प्रकार, आधुनिकता एक सार्वभौमिक घटना नहीं है। इसका उद्भव विभिन्न सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के परिणामस्वरुप होता है, जिससे आगे चलकर अनुकूलन एवं अभिव्यक्तियों की बहुलता को बढ़ावा मिलता है।

प्रश्न: सांस्कृतिक बहुलवाद की अवधारणा का भारत की अनेकता में एकता के संदर्भ में परीक्षण कीजिए।

उत्तर: सांस्कृतिक बहुलवाद को एक ऐसी सामाजिक स्थिति के रूप में जाना जाता है, जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक समूह एक साथ रहते हैं। यह एक ऐसा सिद्धांत है, जो इस धारणा का समर्थन करता है कि बृहद् समाजों में रहने वाले छोटे समूहों द्वारा विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित किया जाना चाहिए।

- भारत में, 'अनेकता में एकता' का प्रसिद्ध विचार, जो विभिन्न सांस्कृतिक, धार्मिक और भौगोलिक पहचान वाले व्यक्तियों के बीच सद्भाव को दर्शाता है, अक्सर सांस्कृतिक बहुलता को चित्रित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

'सांस्कृतिक बहुलवाद' और भारत की विविधता में एकता

- भारत की राष्ट्रीय एकता, प्रगति, विकास और अंतरराष्ट्रीय मान्यता सांस्कृतिक बहुलता पर निर्भर है। अपनी विविध भाषाई, सांस्कृतिक और धार्मिक उत्पत्ति के बावजूद भारत के लोग राष्ट्रीय पहचान की साझा भावना से एक साथ जुड़े हुए हैं।
- भारतीय संविधान अल्पसंख्यक समुदायों के सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकारों का संरक्षण करके सांस्कृतिक बहुलता को बनाए रखने का प्रयास करता है। यह सुरक्षा बड़े समुदाय के भीतर छोटे समुदायों को अपनी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने की क्षमता का विशिष्ट उदाहरण है।
- भारत की सांस्कृतिक बहुलता को यहां के साहित्य, संगीत, नृत्य, वास्तुकला एवं कला की मौलिकता के रूप में देखा जा सकता है। इस समृद्ध विरासत में पारंपरिक संगीत परंपराएं, विविध भजन प्रणालियां तथा शास्त्रीय भारतीय नृत्य शैलियाँ भी शामिल हैं।
- विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोणों के संपर्क में आने से लोगों के बौद्धिक विकास में वृद्धि होती है। इससे लोगों को आलोचनात्मक सोच एवं कौशल विकसित करने, सहानुभूति तथा व्यापक दृष्टिकोण के विकास में मदद मिलती है। सांस्कृतिक बहुलता की संकल्पना लोगों को मानवीय अनुभव की जटिलता को समझने में मदद करती है।
- सांस्कृतिक विविधता भारत की सामाजिक संरचना का एक अनिवार्य घटक है। फिर भी, यहां की सांस्कृतिक विविधता के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। इनमें भाषाई विशिष्टता, अंधराष्ट्रवाद, क्षेत्रवाद तथा समुदायों के भीतर जारी आंतरिक संघर्ष शामिल हैं। इन समस्याओं का समय पर समाधान करते हुए भारत की राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक विविधता को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

जाति व्यवस्था

प्रश्न: जाति व्यवस्था के अध्ययन के गुणारोपणात्मक एवं अंत:क्रियात्मक दृष्टिकोणों के बीच के अंतर का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर: जाति व्यवस्था को दो व्यापक दृष्टिकोणों से देखा जाता है– गुणारोपणात्मक दृष्टिकोण और अंत:क्रियात्मक दृष्टिकोण। गुणों को जाति व्यवस्था से जुड़ी अंतर्निहित अविभाज्य विशेषताएं माना जाता है। अंत:क्रियात्मक दृष्टिकोण में इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि स्थानीय अनुभवजन्य संदर्भ (Local Empirical Context) में जातियों के स्थान का निर्धारण वास्तव में एक-दूसरे के संबंध में किस प्रकार किया गया है।

गुणारोपणात्मक दृष्टिकोण

- गुणारोपणात्मक दृष्टिकोण एक प्रणाली के रूप में जाति व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करता है। साथ ही, इसमें यह भी देखा जाता है कि यह विशेषताएं अन्य सामाजिक स्तरीकरण की संरचनाओं से कैसे भिन्न हैं।
- यह दृष्टिकोण एस. घुर्ये और एम.एन. श्रीनिवास जैसे विद्वानों द्वारा समर्थित है। पदानुक्रम, अंतर्विवाह और पारंपरिक व्यवसाय जैसे अंतर्निहित जाति गुण इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर जाति को परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है।

अंत:क्रियात्मक दृष्टिकोण

- यह दृष्टिकोण एक विशिष्ट अनुभवजन्य संदर्भ में जातियों की वास्तविक रैंकिंग (एक से दूसरी जाति के क्रम) पर विचार करता है। जातिगत अंत:क्रियाओं की गतिशीलता तथा जाति व्यवस्था के अंदर परिवर्तनशील प्रक्रियाएं अंत:क्रियात्मक दृष्टिकोण के अनुसंधान के मुख्य विषय हैं।
- इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार, जाति व्यवस्था एक खुली प्रणाली के रूप में कार्य करती है, जिसमें व्यक्तियों और समूहों की स्थिति में बदलाव होता रहता है।
- अंत:क्रियात्मक दृष्टिकोण को एफ.जी. बेली एवं एल. ड्यूमॉन्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह दृष्टिकोण जाति पदानुक्रम के निर्धारण में अनुष्ठानों और धार्मिक मूल्यों की भूमिका पर जोर देता है।